Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 2 | Issue 4 | (Oct – Dec 2025)

भारतीय काव्यविद्या का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य

आचार्य राहुल पन्त [1], डॉ. नीरज कुमार जोशी [2]
[1] सहायक प्राध्यापक, संस्कृत एवं प्राकृत भाषाएँ विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
[2] संस्कृत एवं प्राकृत भाषाएँ विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश

मानव जीवन कि सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति विद्या (ज्ञान) को कहा जाता है। विद्या व्यक्ति के जीवन को प्रकाशमय बनाने में सहायक सिद्ध होती है। विद्या व्यक्ति के भीतर सोचने समझने कि क्षमता विकसित करती है। विद्या व्यक्ति के आचरण, विचार और व्यवहार को संवारती है। विद्या के द्वारा व्यक्ति आत्मनिर्भर और विवेकशील बनता है।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥[1]

जिन मनुष्यों के पास विद्या नही है, तप जीवन में नही है, दान देने की इच्छा नही है, न ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा है, न ही उनके जीवन में सदाचार है और न ही धर्म है, इस प्रकार के मनुष्य पृथ्वी पर भारभूत मात्र हैं और मनुष्य के रूप में वे पशु के समान व्यर्थ विचरण कर रहे हैं।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥[2]

विद्या से मनुष्य में विनम्रता आती है, विनम्रता से योग्यता आती है, योग्यता से धन की प्राप्ति होती है, धन के द्वारा वह धर्म-कर्म करता है, और धर्म-कर्म से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है। विद्या के द्वारा व्यक्ति को रोजगार की भी प्राप्ति होती है, जिससे वह धनार्जन करके अपने जीवन का निर्वाह करता है। अतः विद्याध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। शस्त्रविद्या एवं शास्त्रविद्या दोनों का आदर करना चाहिए। परन्तु शस्त्रविद्या बुढापे में 'पुरुषार्थ' न होने से काम नही आती, बल्कि उपहास कराती है। लेकिन शास्त्रविद्या सर्वदा (सब काल में) आदर प्रदान कराती है। विद्या सब काल में व्यक्ति को समाज में सम्मान प्राप्त करवाती है। विद्वान पुरुष को समाज आदर और सम्मान कि दृष्टि से देखता है।[3]

मूल आलेख

प्राचीनकाल से ही समस्त भारतीय विद्याओं का उद्देश्य अज्ञानता की निवृति एवं चरम लक्ष्य की प्राप्ति रहा है। विद्या शब्द की व्युत्पत्ति 'विद्' धातु से क्यप् व स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय करने से हुई है। जिसका का अर्थ है ज्ञान, शिक्षा, विज्ञान इत्यादि। जिसके द्वारा अज्ञानरूपी बन्धन से मुक्ति प्राप्त हो सके। उपनिषदों में कहा गया है 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात वही वास्तविक विद्या है जो मुक्ति दिलाने में सहायक हो। उपनिषदों में यह भी कहा गया है कि जिससे अमरता की प्राप्ति हो, उसको 'विद्या' कहते हैं 'विद्ययाऽमृतमश्नुते।' अतएव विद्वानों ने

[1] नीतिशतकम-१३
[2] हितोपदेश-६
[3] हितोपदेश-७

मुक्ति का एक मात्र साधना 'विद्या' को माना है। जिसे मनीषी ब्रह्मसाक्षात्कार, निर्वाण इत्यादि शब्दों से निर्दिष्ट करते हैं। ज्ञान के बिना मुक्ति कथमपि सम्भव नही है 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।' अतः 'विद्या' का निरन्तर अन्वेषण ऋषि-मुनियों द्वारा प्राचीनकाल से ही किया गया है।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा का मूल 'वेद' है। ज्ञानार्थ 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' ही है। 'विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति वेदः' अर्थात जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाये वही 'वेद' है। मनु के अनुसार वेद सभी ज्ञानों के अक्षय कोष हैं 'सर्वज्ञानमयो हि सः।'[4]

वेदों कि संख्या चार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद। उपनिषदों में कई विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा-

मुण्डकोपनिषद में विद्या को दो भागों में विभक्त किया गया है।

परावि‌द्या एवं अपरावि‌द्या। 'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।[5]

'तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षिरमाधिगम्यते॥'[6]

परावि‌द्या वह विद्या है जिस विद्या द्वारा परब्रह्म अविनाशी परमात्मा का तत्वज्ञान होता है, वह 'परा' विद्या है। भारतीय संस्कृति में परा विद्या से तात्पर्य स्वयं को जानने या परम सत्य को जानने से है। चार वेद एवं छः वेदांग इन दस विद्याओं का नाम अपरा विद्या है। अपरा विद्याओं में ही चतुर्दश विद्याओं का समाहार हो जाता है। चरों वेदों के सहित संस्कृत साहित्य के आकार के रूप में चतुर्दश विद्याओं के रूप में परिगणित हैं। चतुर्दश विद्याओं का उल्लेख पुराणों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों में प्राप्त होता है।

छान्दोग्योपनिषद में सनत्कुमार ने नारद को जो उपदेश दिये उस उपदेश में कई विद्याओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है। वे विद्याएँ इस प्रकार से हैं-

'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं बाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।'[7]

अर्थात ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद, इतिहास-पुराण पाँचवाँ वेद, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या, नृत्य-संगीत आदि कला-शिल्पविद्या का उल्लेख प्राप्त होता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में चौदह विद्याओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। वे इस प्रकार से हैं-

पुराण्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रितः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥[8]

---

[4] मनुस्मृति २/७

[5] मुण्डकोपनिषद् १/१/४

[6] मुण्डकोपनिषद् १/१/५

[7] छान्दोग्योपनिषद् ७/१/२

[8] याज्ञवल्क्य स्मृति १/३

अर्थात- पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और छः वेदाङ्ग के साथ चारों वेद, विद्याओं तथा धर्म के चौदह स्थान हैं। चार वेद- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। छः वेदांग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। चार उपांग- पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। ये चौदह विद्याएँ हैं। इसके अतरिक्त उपपुराण भी हैं उनका समायोजन पुराणों के अन्तर्गत है। ठीक इसी प्रकार वैशेषिक शास्त्र न्याय में, वेदान्तशास्त्र का मीमांसा में, महाभारत, रामायण, सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णव आदि शास्त्रों का धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव होता है। चार उपवेदों के सहित यही विद्याएँ अट्ठारह भी मानी जाती है। उपवेद हैं- आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अथर्ववेद।

अग्निपुराण महापुराण है। इसमें समस्त विद्याओं का विषय वर्णित है। 'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वाः विद्या प्रदर्शिताः।'[9] इसमें 'पराविद्या एवं 'अपराविद्या' इन दोनों विद्याओं का प्रतिपादन किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामक वेद विद्या, विष्णु महिमा, संसार सृष्टि, छन्द, शिक्षा, व्याकरण, निघन्टु (कोष), ज्योतिष, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र, आयुर्वेद, पुराणविद्या, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र, वेदान्त और महान (परमेश्वर) श्रीहरि यह सब 'अपराविद्या' के अन्तर्गत आते हैं। तथा परम अक्षर 'पराविद्या' है। विष्णु पुराण में भी मुख्य रूप से चौदह विद्याएँ वर्णित हैं। वे इस प्रकार से हैं-

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।

पुराणां धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥[10]

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।

अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः॥[11]

अर्थात छः वेदांग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्याएँ हैं। इन्हीं में आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्ववेद इन तीनों को तथा चौथे अर्थशास्त्र को समाहित कर लेने से कुल अट्ठारह विद्याएँ हो जाती हैं।

आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चार विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है। आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्यायें हैं। मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्यों ने त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन तीन विद्याओं को मानते हैं। बृहस्पति के अनुयायी केवल दो ही विद्यायें मानते हैं- वार्ता और दण्ड नीति। उनके मतानुसार त्रयी तो दुनियादारी (लोकयात्राविद)लोगों की आजीविका का साधन है। शुक्राचार्य के अनुयायी तो केवल दण्डनीति को ही मानते हैं। किन्तु आचार्य कौटिल्य ने चारों विद्याओं को माना है। 'आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या।'[12]

आन्वीक्षकी- यह विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं को प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गयी है।

त्रयी- सामवेद, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद इन तीनों का समन्वित नाम ही त्रयी विद्या है। यह विद्या धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म में स्थिर रखने के कारण लोक में उपकारक है।

---

[9] अग्निपुराण ३८३/५२

[10] विष्णु पुराण ३/१३/२८

[11] विष्णु पुराण ३/१३/२९

[12] कौटिलीय अर्थशास्त्र अ० १/१

वार्ता- कृषि पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि प्रदान की उपकारिणी विद्या है।

दण्डनीति- आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड (शासन) को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कहलाती है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय जी का कथन है- "भारतवर्ष का यह सुन्दर देश सदा से प्रकृति-नटी का रमणीय रंगस्थल बना हुआ है। पृकृति-देवी ने अपने कर-कमलों से सजाकर इसे शोभा का आगार तथा सुषमा का निकेतन बनाया है। इसका बाह्यरूप जितना अभिराम है। आन्तर रूप उतना ही आभामय है"। अत्यन्त प्राचीनकाल में प्रथम-प्रथम कोमल कविता का उद्गम इसी भारतवर्ष पर सम्पन्न हुआ। यह देश साहित्यशास्त्र की उद्गम भूमि है। संस्कृत वांग्मय में महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' आदिकाव्य माना जाता है और महर्षि वाल्मीकि जी आदि कवि के रूप में समादृत हैं। वास्तव में 'रामायण' एक महान कवि की महती कृति है, इस काव्य में एक ओर इसके रचयिता की विलक्षण काव्य-प्रतिभा का समावेश है और दूसरी ओर जिस देश में इस काव्य की रचना हुई वहाँ के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आध्यात्मिक और आदर्श जीवन की समग्रताओं का समवेत समन्वय है। प्रायः सभी जानते हैं कि आदिकाव्य रामायण और महर्षि व्यास कृत महाभारत परवर्ती महाकवियों और नाटककारों के महाकाव्यों और नाटकों के उपजीव्य रहे हैं।

काव्य का अर्थ-

'काव्य' शब्द का अर्थ, कवि की कृति होता है। अर्थात कवि जो कार्य करता है, उसे 'काव्य' कहा जाता है। सर्वप्रथम 'काव्यलक्षण' अग्निपुराण में प्राप्त होता है। वहाँ उल्लिखित है- 'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्न पदावली काव्यम्।' अर्थात संक्षेप से जो वाक्य होता है उसका नाम काव्य है, और संक्षेप से वाक्य का अर्थ है कि जिस अर्थ को कहना चहाते हैं वह जितने से कहा जा सकता है उससे न अधिक न कम, इस तरह की पदावली काव्य है। भामह के अनुसार काव्य का लक्षण है- 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा।'[13] यह काव्य का लक्षण जितना प्राचीन है उतना ही संक्षिप्त है। उन्होंने शब्द और अर्थ दोनों के सहभाव को काव्य माना है। वह काव्य दो प्रकार का है गद्य काव्य और पद्य काव्य। पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य का लक्षण निरुपित करते हुए कहा है- 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'। आर्थात रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करने वाला शब्द काव्य है। आचार्य विश्वनाथ प्रणीत काव्य का लक्षण है 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'। अर्थात रसात्मक वाक्य काव्य है।

संस्कृत वांग्मय भारतीय समाज के उदात विचारों का दर्पण है। संस्कृत काव्य जीवन की प्रतिकूल प्रस्तिथियों में भी आनन्द की खोज में सदैव संलग्न रहा है। आनन्द को परमेश्वर का विशुद्ध पूर्णरूप कहा गया है 'रसौ वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।'[14] अतएव संस्कृत काव्य 'रस' है। रस का उन्मीलन श्रोता तथा पाठकों के हृदय में आनन्द का प्रकट होना ही काव्य का चरम लक्ष्य है।

कवि का अर्थ है किसी विषय को कहने वाला अथवा प्रतिपादन करने वाला होता है और कोषकार उसे पंडित कहते हैं- 'संख्यावान् पण्डितः कविः।' अर्थात किसी विषय का प्रतिपादन करने वाला 'विद्वान'। ध्वन्यालोक लोचन में अभिनव गुप्त कहते हैं- 'कवयति इति कविः तस्य कर्म काव्यम्'। अर्थात जो काव्य रचना करता है वह कवि है और उसका कर्म काव्य रचना है।

---

[13] काव्यालंकार १.१६

[14] तैत्तिरियोपनिषद २/७

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।

कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥[15]

अर्थात पृथ्वी पर मनुष्य जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है। उसमें भी विद्या प्राप्त होना दुर्लभ है। संसार में कवि होना और भी दुर्लभ है। कवि हो भी गये तो प्रसिद्धि पाना अत्यन्त दुर्लभ है।

आचार्य राजशेखर का मत- आचार्य राजशेखर ने सम्पूर्ण वांग्मय को काव्य एवं शास्त्र दो प्रकार का माना है। इनके अनुसार शास्त्र के अध्ययन के पश्चात ही काव्य विद्या में प्रवेश करना उचित है। काव्य के लिए शास्त्र दीपक के समान उपयोगी सिद्ध होता है। शास्त्र का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है अपौरूषेय तथा पौरुषेय।

अपौरुषेय शास्त्र में मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का समावेश है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद त्रयी कहलाते हैं। अथर्वेद को चतुर्थ वेद कहा जाता है। छन्दोबद्ध मन्त्र ऋचा है। गायन युक्त होने पर वे ही मन्त्र साम कहलाते हैं। छन्द रहित मन्त्र यजुष हैं। और तीनों का मिश्रण ही अथर्व है। इसी प्रकार चार उपवेद भी हैं। छः वेदांगों कि संख्या हैं, किन्तु राजशेखर के मत में अलंकार शास्त्र भी वेद का सप्तम अंग है।

पौरुषेय शास्त्रों में पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा, स्मृति और तंत्र का परिगणन किया जाता है। पुराण अट्ठारह हैं। इतिहास पुराण का ही अंग है। स्मृतियों कि संख्या अट्ठारह है। इस प्रकार चार वेद, छः वेदांग, और चार शास्त्र ये ही १४ विद्याएँ हैं। लेकिन राजशेखर काव्य को पन्द्रहवीं विद्या मानते हैं।

राजशेखर ने अपने ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' में काव्य पुरुष का निरूपण करते हुए कहा है- 'शब्दार्थौ ते शरीरम्, संस्कृतं मुखम्, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्, समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिचणं च ते वचः, रस आत्मा, रोमाणिछन्दांसि, प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिकं च वाक्केलिः, अनुप्रासोपमादयश्च मलंकुर्वन्ति।'[16] अर्थात शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, संस्कृत मुख है, प्राकृत बाहु है, अपभ्रंश जंघा है, पैशाची (भाषा) पैर है तथा मिश्रित भाषा हृदय वक्षःस्थल है। समता, प्रसन्नता, माधुर्य, औदार्य और तेज काव्य पुरुष के गुण हैं। वाणी उत्कृष्ट है। रस काव्य कि आत्मा है। छन्द रोयें हैं। प्रश्नोत्तर रूप काव्य तथा प्रहेलिका आदि वाग्विनोद हैं। अनुप्रास एवं उपमा आदि अलंकार काव्य को अलंकृत करते हैं।

काव्य के भेद-

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भांति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है। भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को अलग रखकर आनन्द की अनुभूति को अपना लक्ष्य मानता है। अतः संस्कृत काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द कि खोज में सदा संलग्न रहा है। संस्कृत का कवि अपनी कविता को कलात्मक वस्तु के समान सजाने तथा भूषित करने का अश्रान्त प्रयास करता है। संस्कृत के कवि सौन्दर्य तथा माधुर्य के उपासक होते हैं। उनका हृदय सौम्य भाव में विशेष रमता है। संस्कृत साहित्य में काव्य विधा को मुख्य रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया गया है, जो कि इस प्रकार से हैं-श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य। श्रव्य काव्य वह है जो सुनने या पढ़ने के लिए होता है, जैसे कि महाकाव्य, खण्डकाव्य, और गीतिकाव्य। दृश्य काव्य वह है जो नाटक अथवा अभिनय के माध्यम से होता है।

---

[15] अग्निपुराण ३३७/३-४

[16] काव्यमीमांसा अध्याय ३

काव्यविद्या का प्रयोजन एवं उद्देश्य-

काव्य का प्रयोजन और उद्देश्य सौन्दर्य प्रदान करना है। संस्कृत के आचार्यों ने आरम्भ से ही इस प्रयोजन को स्वीकार किया है। काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में इसके अतरिक्त भी अनेक काव्य प्रयोजनों का निरूपण किया गया है। जैसे पाठक के लिए- (१) आनन्द, शान्ति, (२) धर्म, निति और अध्यात्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त होना, (३) कला और व्यवहार-ज्ञान में कुशलता। कवि के लिए जैसे- काव्य यश कि प्राप्ति और धनादि भी प्राप्त करवाता है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार- दुखार्त्तन्यं श्रमार्त्तानां शोकर्तानां तपस्विनाम्। विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥[17] दुखी और चिन्ताग्रस्त व्यक्तियों के मन को नाट्य विश्राम और शान्ति प्रदान करता है। भामह के अनुसार-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम् ॥

काव्य अध्ययन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति, समस्त कलाओं में निपुणता के साथ-साथ उत्तम काव्य से कीर्ति और प्रीति (आनन्द) की भी प्राप्ति होती है। आचार्य मम्मट के अनुसार-

काव्यंयशसेऽर्थकृते व्यवहारविदेशिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिर्वत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥[18]

काव्य यश के लिए, अर्थ प्राप्ति के लिये, व्यवहार ज्ञान के लिए, अमंगल निवारण के लिए, अलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए और स्त्री के समान मधुर उपदेश प्राप्ति के लिए प्रयोजनीय होते हैं। मम्मट के अनुसार काव्य के मूलतः छः प्रयोजन हैं।

१. यश प्राप्ति
२. अर्थ प्राप्ति
३. लोक व्यवहार का ज्ञान
४. अनिष्ट का निवारण या लोक मंगल
५. आत्मशान्ति या आनन्दोपलब्धि
६. कान्तासम्मित उपदेश

आचार्य कुन्तक ने अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्तिकाव्यजीवित' में काव्य का प्रयोजन अधिक स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं-

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।

काव्यबन्धोभिजातानां हृदयाह्लादकारकः ॥३ ॥[19]

व्यवहारपरिस्पन्दसौन्दर्य व्यवहारिभिः।

---

[17] ना०शा० १/१११/१२

[18] काव्यप्रकाश १.२

[19] वक्रोक्तिकाव्यजीवित ३

सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ॥४ ॥[20]

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।

काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ॥५ ॥[21]

अर्थात काव्य रचना राजकुमार आदि के लिए सुन्दर एवं ढंग से कहा गया धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का सरल मार्ग है। सत्काव्य के परिज्ञान से व्यवहार करने वाले लोगों को अपने-अपने व्यवहार का पूर्ण एवं सुन्दर ज्ञान प्राप्त होता है। काव्य सहृदयों के हृदय में चतुर्वर्ग-फल की प्राप्ति से भी अधिक आनन्दानुभूति रूप चमत्कार उत्पन्न कराने में सहायक होता है।

निष्कर्ष

'विद्या' का निरन्तर अन्वेषण ऋषि-मुनियों द्वारा प्राचीनकाल से ही किया गया है। विद्या से तात्पर्य ज्ञान या शिक्षा से है। मानव जीवन कि सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति विद्या (ज्ञान) को कहा जाता है। विद्या व्यक्ति के जीवन को प्रकाशमय बनाने में सहायक सिद्ध होती है। विद्या व्यक्ति के भीतर सोचने समझने कि क्षमता विकसित करती है। विद्या व्यक्ति के आचरण, विचार और व्यवहार को संवारती है। विद्या के द्वारा व्यक्ति आत्मनिर्भर और विवेकशील बनता है। संस्कृत काव्य विद्या जीवन की प्रतिकूल प्रस्तिथियों में भी आनन्द की खोज में सदैव संलग्न रही है। आनन्द को परमेश्वर का विशुद्ध पूर्णरूप कहा गया है 'रसौ वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' अतएव संस्कृत काव्य 'रस' है। रस का उन्मीलन श्रोता तथा पाठकों के हृदय में आनन्द का प्रकट होना ही काव्य का चरम लक्ष्य रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक डॉ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', प्रकाशक- चौखम्बा भारती अकादमी वाराणसी
2. प्रस्थानभेद, लेखक श्री मधुसूदन सरस्वती, प्रस्तावना लेखक डॉ गजानन शास्त्री मुस्लगाँवकर, हिंदी व्याख्याकार डॉ कमलनयन शर्मा
3. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, लेखक महामहोपाध्याय पी० वी काणे, अनुवादक डॉ इंद्रचंद्र शास्त्री, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली ११०००७
4. संस्कृत वांग्मय का बृहद इतिहास (तृतीय खण्ड), प्रधान सम्पादक पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, सम्पादक प्रो० भोलाशंकर व्यास, प्रकाशक- उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ
5. संस्कृत वांग्मय का बृहद इतिहास, (चतुर्थ खण्ड) प्रधान सम्पादक पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, सम्पादक प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रकाशक- उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक वाचस्पति गैरोला, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

[20] वक्रोक्तिकाव्यजीवित ४

[21] वक्रोक्तिकाव्यजीवित ५

7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक- शारदा निकेतन ५ बी, कस्तूरबा नगर, सिगरा वाराणसी-२२१००१०
8. हिंदी रसगंगाधर, लेखक पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, सम्पादक महादेव शास्त्री, प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
9. काव्यमीमांसा, लेखक कविराजश्रीराजशेखर, व्याख्याकार पं श्रीकृष्णमणित्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
10. नीतिशतकम् लेखक भर्तृहरि, टीकाकार डॉ राजेश्वर शास्त्री मुसलगांवकर, सम्पादक डॉ सुरेश कुमार अवस्थी, प्रकाशक चौखम्बा प्रकाशन
11. हितोपदेश, लेखक नारायण पण्डित, भाषाटीकाकार पण्डित रामेश्वर भट्ट
12. संस्कृत हिंदी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे
13. विष्णुपुराण, लेखक महर्षि व्यास, प्रकाशक- गीताप्रेस गोरखपुर
14. अग्निपुराण, लेखक महर्षि व्यास, प्रकाशक- गीताप्रेस गोरखपुर
15. उपनिषद- अंक, गीताप्रेस गोरखपुर
16. छान्दोग्योपनिषद
17. मनुस्मृतिः महर्षिमनुप्रणिता, अनुवादक एवं व्याख्याकार, शिवराज आचार्यः कौण्डिन्नयायनः, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
18. याज्ञवल्क्यस्मृतिः श्रीमद्योगीश्वरमहर्षियाज्ञवल्क्यप्रणिता, हिन्दी व्याख्याकार एवं सम्पादक डॉ गङ्गासागरराय, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।
19. कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, व्याक्याकार वाचस्पति गैरोला, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २२१००१
20. काव्यप्रकाश, लेखक आचार्य मम्मट
21. साहित्यदर्पण, लेखक आचार्य विश्वनाथ
22. ध्वन्यालोक, आचार्य आनन्दवर्धन
23. वक्रोक्तिजीवितम्, आचार्य कुन्तक